अध्याय 2
हिन्दी कविता में स्त्री विमर्श

व्यक्ति, समाज और साहित्य पृथक-पृथक इकाई होते हुए भी अपनी विकास प्रक्रिया के लिए एक दूसरे पर निर्भर हैं। साहित्य मूलत: संवेदनशील और चेतनावान होने का प्रमाण है। जो समाज चेतन एवं संवेदनशील होता है, वही साहित्य का लेखक, पाठक, चिन्तक और समीक्षक आदि बनता है। चेतना शून्य समाज को जगाने का बीड़ा साहित्य ही उठाता है। साहित्य मूलत: मनोरंजन के साथ-साथ उपदेश तथा संदेश भी देता है, क्या स्वीकार्य क्या अस्वीकार्य, क्या वैध, क्या अवैध, क्या करणीय, क्या अकरणीय, क्या प्रिय, क्या अप्रिय, क्या वन्दनीय क्या निन्दनीय, क्या हेय; क्या गेय तथा क्या उचित, क्या अनुचित जैसे अनेक विचारों का बोध साहित्य ही कराता है।

साहित्य की विभिन्न विधाएँ व्यक्ति और समाज के जीवन को अलग-अलग ढंग से अभिव्यंजित करती हैं। चाहे वह गद्य में हो या पद्य में। विमर्शों के इस दौर में कविता कविता नहीं रही हैं, विमर्श है। ऐसा विमर्श, जहाँ गद्य और पद्य के भेद मिट गये हैं। कविताओं में रचनाकार हमारे समय को बदलने की हमारे अन्दर की संवेदना को जगाने की, समय और समाज से हमारे सरोकारों की बात करता है। समकालीन कवि का उत्तरदायित्व इतना व्यापक हो गया है कि वह कल्पना की दुनिया में भ्रमण करते हुए कविता नहीं लिख सकता। अपने समय के समाज की सच्चाई को अनदेखा करते हुए या उससे विमुख होकर कविता करना कवि के लिए श्रेयस्कर नहीं। समकालीन विषयों को उनके अर्थ-गाम्भीर्य के साथ जन समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना ही समकालीन कवि का दायित्व रहा है।

हिन्दी कविता में स्त्री-विमर्श का स्वरूप -

हिन्दी कविता में स्त्री-विमर्श का स्वरूप हिन्दी साहित्य में जहाँ सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों की समस्याएँ, प्रगति और विकास पर विचार हो रहा है। इस संक्रमणकालीन युग में सभी साहित्यकार नारी जीवन के सभी पहलूओं को विश्लेषित करने में प्रयासरत हैं। आज सारे देश में नारी-

विमर्श साहित्य प्रथम पंक्ति में है। संसार का लिखित तीन चौथाई से अधिक साहित्य स्त्री केन्द्रित है। समकालीन कविता के क्षेत्र में भी नारी लेखन स्त्री सशक्तिकरण, नारी समस्याएँ, नारी चुनौतियाँ आदि विषय निरन्तर काव्य का आधार हैं।

वैदिक काल से लेकर अद्यतन काल तक स्त्री को समाज तथा साहित्य में यथोचित महत्व दिया गया है। भारतेन्दु काल से लेकर आज तक के रचनाकार, कवि आदि स्त्री को चित्रित करने से अपवाद नहीं बने है। तद्युगीन समाज में स्त्री सम्बन्धित समस्याओं तथा व्याप्त विसंगतियों का जो चित्रण हमें उस काल के साहित्य में दृष्टिगत होता है, इतना प्रखर नहीं हैं। समकालीन दौर में जो भी सामाजिक स्थितियाँ नये सिरे से परिवर्तन की अनिवार्यता के तहत विश्लेषित हुई, जो सदियों से पराधीन और पिछड़ी रह गयी थीं, उनमें स्त्री सम्बन्धी पुरानी रूढ़ मान्यता भी एक है। अत: समकालीन कवयित्रियों की रचनाएँ अपने स्वत्व का अन्वेषण करती है तो उसका आशय यह है कि पूँजीवादी संस्कृति जो नव उपनिवेशवादी रूप धारण करके समाज में व्याप्त हो रही है, उसके विरूद्ध संघर्ष जारी करने का प्रयास स्त्री कविता कर रही है।

शैल कुमारी के अनुसार- "कविता के पाठक के नाते मुझे लगता है कि कविता- विचारधाराओं के लिए नहीं रची जाती है, वह विचारधाराओं के बीच लिखी जाती है। होता यह है कि जीवन विचारधारात्मक निमितियों से अटा होता है और उनकी टकराहटें विशुद्ध विचारात्मक नहीं होती। जीवन में इनकी टकराहटों के इतने मोर्चे, इतने स्तर और इतने आयाम होते है कि उस समग्र पुंज को कोई भी विचारधारा पूरी तरह धारण करने में अपर्याप्त होती है। उन अपर्याप्तताओं में कविता होती है, कविताएं वहीं से जीवन पाती हैं। कविता की भी यही स्वभूमि है।"[1] परन्तु वर्तमान को समझने के लिए हमारा अतीत में झाँकना आवश्यक है कि किस प्रकार आदिकाल से लेकर आज तक स्त्री हिन्दी साहित्य की कविता विधा में चित्रित हो रही हैं।

वैदिक काल एवं आदि काल में स्त्री विमर्श-

वैदिक काल के काव्य में स्त्री विमर्श: अनेकश: बहुधा यह उल्लेख मिलता है कि आरम्भिक समय में स्त्रियों की स्थिति ज्यादा बेहतर थी। वे वैदिक ऋचाओं की निर्मात्री, शास्त्रार्थ करती, आखेट करती युद्ध करती, स्वयंवर, बहुविवाह, नियोग आदि की आजादी को जीती थी। लेकिन उन्हीं धर्मग्रन्थों में यह भी लिखा है कि जब गार्गी याज्ञवल्यक के साथ समर्थ ढंग से शास्त्रार्थ कर रही थी, तब धड़ से सिर को अलग कर देने की धमकी के साथ उसे चुप्प कर दिया गया था। अतोगार्गि मतिप्राक्षि: मर्तुचैत्रेच्छसि"[2] लेकिन मनुस्मृति में तो स्त्री पराधीनता हेतु पूरे के पूरे अध्याय ही रचे गये। जहाँ एक तरफ यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता कहकर उसे देवी के पद पर आसीन किया गया, वही दूसरी ओर न स्वातंत्रयेणकर्तव्यं किंचित की घोषणा के साथ पिता, पुत्र और पति का संरक्षणत्व स्त्रियों को मिला। वैदिक विदूषियों जैसे मैत्रेयी, जबाला, लोपा आदि कुछ ही नारियों की स्थिति को उच्च बताने की कोशिश की जाती है, वरन् तो वेदों, ब्राहमण ग्रन्थों और स्मृतियों में भी नारी को तोड़ने योग्य माना गया है तथा नारी के स्वभाव की निन्दा की गयी है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद संहिता में एक मन्त्र है- स्त्रिय आशास्यं मन: उतो अह ऋतु रघुम"[3] अर्थात् स्त्री के मन पर शासन नहीं किया जा सकता, उसकी बुद्धि और कर्म क्षुद्र और लघु होते हैं। इसी तरह के मन्त्र चारों वेदों-सामवेद, ऋग्वेद, अर्थवेद और यजुर्वेद में भी मिलते हैं। वैदिक काल में ऊँचे कुल की स्त्रियों की स्थिति ही उत्तम थी, बाकी स्त्रियों की स्थिति निन्दनीय। मनु ने तो नारी की निन्दा का महल ही खड़ा कर दिया और कौटिल्य के अर्थशास्त्र, चाणक्य नीति, शुक्र नीति, हितोपदेश आदि ग्रन्थों में भी नारी की घोर निन्दा की गयी है। यथा- अनृतं साहसं मौर्य, कामधिक्यं, स्त्रिया यत।"[4] अर्थात् स्त्री में झूठ और काम अधिक होता है। अत: उसे पीटना चाहिए। वास्तव में वेदों, उपनिषदों में नारी के प्रति घोर अपमानजनक बातें उसके काल में उसकी निकृष्ट स्थिति को दर्शाती है।

आदिकालीन काव्य में स्त्री विमर्श-

आदि काल में अनेक साहित्यक धारणाएँ प्रचलित थी, यथा-सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, जैन साहित्य और रासो साहित्य। सिद्ध साहित्य की रचनाओं के बारे में डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते है- ''सातवीं शती से ही हम सिद्धों की रचनाओं को अपनी भाषा के प्रारम्भिक रूप में पाते है। इन रचनाओं के वर्ण्य विषय-हठयोग, मन्त्र और स्त्री है, जो व्रजयान के मुख्य रूप है।''[5] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि सिद्ध साहित्य के वर्ण्य विषयों में स्त्री भी थी, परन्तु यहाँ स्त्री मात्र भोग्या के रूप में वर्णित है। सिद्धों ने उसे नरक का द्वार मानकर इसको त्यागने की बात कही है। दूसरी ओर मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ, जो नाथ साहित्य के प्रवर्तक माने जाते है, स्त्री को योग साधना में बाधक मान उसका बहिष्कार करते है अर्थात् स्त्री यहाँ भी एक बाधा के रूप में उपस्थित है। जैन साहित्य की बात करें तो वह पूर्णत: धार्मिक रहा है, जिसमें स्त्री का चित्रण कथानुसार ही प्रस्तुत है, कोई विशेष चर्चा यहाँ नहीं मिलती।

वीरगाथापरक रासो ग्रन्थों से इतर रासो साहित्य में प्रेम कथाओं और विरह गाथाओं का जो वर्णन मिलता है, उसमें स्त्री मात्र आलम्बन के रूप में चित्रित है। उसकी प्रगति या सशक्तिकरण की चर्चा इन काव्यों में नहीं हुई है। किन्तु कुछ अंश बीसलदेव रासो में देखे जा सकते है। पुरुष की स्वार्थमय रसिकता ने नारी जीवन से ही नारी को विरक्त बता देती है-

> ''अस्त्रीय जनम काई दीघउ महेस
> अवर जनम धारइ घणा रे नरेश
> रानि न सिरजीय रोझड़ी,
> घणह न सिरजीय धउलीय गाइ।
> वनषंड काली कोइली
> हउं वरइसती अंबा नई चम्पा की डाल
> भषतो वाष विजोरडी।''[6]

भक्तिकाल में स्त्री विमर्श-

भक्तिकालीन काव्य में स्त्री विमर्श:

हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने वाले भक्ति काल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग भी कहा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस युग के साहित्य को दो भागों में विभाजित किया है- निर्गुण भक्तिधारा व सगुण भक्तिधारा। निर्गुण भक्ति काव्य में तो सन्त कबीरदास नारी की उपेक्षा और निन्दा करने में अग्रणी रहे है। उनके अनेक दोहों में नारी को नरक का द्वार, साधना में बाधक, डाकिनी, सर्पिणी आदि कहकर ही वर्णित किया गया है-

''नारी तो हम भी करी, जाना नहिं विचार।

जब जान तक परिहरी, नारी बड़ा विकार।"[7]

कबीर जी-नारी से संसर्ग करने के कारण पुरुष के तीन सुख नष्ट होने की बात करते है-

''नारि नसावैं तीनि सुख, जा नर पासैं होइ।

भगति मुकति निज ग्यान मैं, पैसि न सकई कोइ।"[8]

कबीर ने नारी और सोने को अग्नि की भांति माना है-

''एक कनक अरु काँमनी, दोऊ अगनि की झाल।

देखे हीं तन प्रजलै, परस्याँ ह्वै पैमाल।"[9]

अत: हम देखते है कि भक्तिकालीन काव्य में केवल मीराबाई और रत्नावली जैसी नारियों की रचनाओं ने ही स्त्री का मान बढ़ाया है। वरना तो पुरूषों ने स्त्री को एक विकार के अतिरिक्त कुछ नहीं समझा।

सगुण भक्तिधारा में मीराबाई का नाम प्रथम सोपान पर है। मीरा का व्यक्तित्व एक तरह से पूरी व्यवस्था को चुनौती देने वाला रहा है। समाज की जड़ता को तोड़कर स्वच्छन्दता की राह दिखाने वाली मीरा ने तत्कालीन सामन्ती समाज

व्यवस्था के बन्धनों को निडरता से तोड़कर अपने प्रिय के प्रति प्रेम को व्यक्त किया था। 'मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरों न कोय' तो एक के स्वीकार में पूरी व्यवस्था के निषेध का क्रान्तिकारी दर्शन घटित दिखायी देता है"[10] मीरा बाई का काव्य उनके हृदय से निकल सहज प्रेमोच्छ्वास का सामर्थ्य रूप है।

बिरहनी बावरी सी भई।

ऊँची चढ़ि अपने भवन में टेरत हाय ढई।

ले अंचरा मुख अँसुवन पोंछत उघरे मात सही।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर बिछुरत कछु न कही।"[11]

उनके पदों में श्रृंगार के उद्दीपन विभाव विद्यमान है-

"दादुर मोर, पपीहा बोले, कोयल मधुरे साज।

उग्यो इन्द्र चहुँ दिसि बरसे, दामिनी छोड़ी लाज।

धरती रूप नवा-नवा धरिया, इन्द्र मिलण के काज।

मीरा के प्रभु हरि अविनाशी, वेग मिलो महाराज।

विरह दशा-

कैसे जिऊँ री माई, हरि बिन कैसे जिऊँ री।

मीराबाई का प्रसिद्ध गीत-

हेरी मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाने कोय।

सूली ऊपर सेज हमारी किस विध सोना होय।"[12]

मीराबाई के पश्चात् भक्तिकाल में तुलसीदास जी की पत्नी रत्नावली का नाम लिया जा सकता है। तुलसीदास जी अपनी पत्नी के प्रेम में इतने लिप्त थे कि पत्नी के पीछे-पीछे उसके मायके पहुँच गये तब उनकी पत्नी ने जो दोहे कहे-

लाज न लागत आपको दौरे आएहु साथ।

धिक-धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ।

अस्थि चर्ममय देहमम तामें जैसी प्रीति।

तैसी जौ श्रीराम महँ होति न तो भव भीति।"[13]

प्रेमावेशित तुलसीदास जी जब उसके पास पहुंचे तो रत्नावली ने उत्फुल्ल होकर कहा-

"मा सम को बड़ भाग नारि। मो सम को तिय पतिहिं पियारी।

सीम प्रेम तुम करी पारा। नाथ प्रेम के तुम आधारा।

मम सुप्रेम निज हिये धारि। उतरे पिय सुर सरित पार।

जग अधार पद प्रेम धार। जात मनुज भव उदधि पार।"[14]

नारि का नारीत्व ही पति सेवा है। नारी के लिए पति सुख समान कोई सुख नहीं-

"धन-सुख, जन-सुख, बंधु-सुख, सुत सुख सबहि सराहि।

पै रत्नावली सकल सुख, पिय सुख पटतरि नाहिं।"[15]

सती के लिए रत्नावली का संदेश-

तन-मन पति सेवा रित हुलसे पति लखि जाये।

इस पति कंह पुरुष गनै, सती सिरोमनि सो।

सती धरम धरि सांचि नित हरि सों पति कुसलात।

जनम-जनम तु तिव 'रतन' अचल रहे अहि बात।

इसी प्रकार आगे कहती है-

चिनगारिहु रत्नावली तुरतहि देह जराय।

लघु कुसंग तिमि नारि को पतिव्रत देत डिगाय।"[16]

महादेवी के भांति उनके काव्य में टीस, वेदना, कसक और यथार्थ जीवन की बांकी-झांकी देखने को मिलती है-

"हार बदरका वन भई, हों बामा विष बेलि।

रत्नावलि हो नाम की, रसहि दिया विष मेलि।

दीनबन्धु कर घर पली, दीनबन्धु कर छाँह।

तोऊ भई हो दीन अति, पति त्यागी मों बाँह।"[17]

उसी के कारणीभूत यह सन्त तुलसीदास का रूप हमारे सामने उपस्थित है। इन दो कवियों के साथ-साथ एक ओर नाम इस भक्तिधारा में जुड़ता है, वह है आण्डाल का, जो आलवार भक्त थी। आण्डाल के लिए कहा जाता है कि इनकी तुलना मीराबाई के साथ की जाती है। दोनों में ही समर्पण की भावना विद्यमान थी। बारहवीं शताब्दी में कन्नड़ रचनाकारों में अक्क महादेवी का नाम भी है। जो उडुतड़ि गांव की रहने वाली थी।"[18] इनके वचनों के बारे में कहा जाता है कि-

"आद्यशिव शरणों के साठ वचनों का सार,

मिल बसवण्णा के बीच वचनों में

बसवण्णा के बीस वचनों का सार,

मिले प्रभुदेव के दस वचनों में।

प्रभुदेव के दस वचनों का सार,

मिले अजगण्णा के पाँच वचनों में।

अजगण्णा के पाँच वचनों का सार,

मिले कूडन चन्नसंगय्या की (प्रिया),

अक्क महादेवी के एक ही वचन में।"[19]

बचपन से ये इष्टदेव के प्रेम में लीन थी-

"अमर अविनाशी, अरूप सुन्दर पर रीझ गयी री मैं,
अनादि अनन्त, अविरामी चिह्न विहीन,
सलोने सुभग को अपनाया मैंने री माई,
अभय, भयविहीन निस्सीम को अपनाया मैंने
चन्न मल्लिकार्जुन नाम के पति पर
अत्यधिक रींझ गयी मैं री माई।"[20]

पुरुषवादी सत्ता के प्रति उनका विद्रोह निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"हाय री हाय! देख तो संसार का नाटक!
तात-पिता के वेश में सबसे पहले आया।
मूँछों पर ताव देकर बीचोंबीच आया।
बुढ़ापा बनकर अन्त में आया।
लेकिन तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही
इस नाटक पर पर्दा जड़ गया
हे चन्नमल्लिकार्जुन, मैंने यह जान लिया।"[21]

सगुण भक्ति काव्य में तुलसीदास जी का नाम भी उल्लेखनीय है। स्त्री के सन्दर्भ में लिखी उनकी इस चौपाई से कौन परिचित नहीं है- ढोल, गँवार, शुद्र, पशु नारी ये सब ताड़ना के अधिकारी।" तुलसीदास जी ने भी नारी को निन्दा का पात्र माना है रामचरितमानस और रामायण जैसे विश्वविख्यात धार्मिक ग्रन्थों में भी स्थान-स्थान पर नारी को अवगुणों की खान ही कहा गया है। आदि काल में महिलाओं को अभिव्यक्ति के अनुकूल विषय व अवसर नहीं मिले, पर भक्तिकाल में महिलाओं को भरपूर अवसर मिले। भक्तिकाल में सहजोबाई की प्रेम अभिव्यक्ति-

"प्रेम दिवाने जे भये, मन भयो चकानचूर।

छके रहे घूमत रहे, सहजों देख हुजूर।"[22]

उनके द्वारा एकनिष्ठ समर्पण का भाव देखे-

"निरपच्छी के पच्छ तुम, निराधार के धार।

मेरे तुम ही नाथ इक, जीवन प्राण अधार।"[23]

भक्तिकालीन कवयित्रियों में जुगलप्रिया का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने धार्मिक सम्प्रदायों पर आस्था रखी। आपने विरह, प्रेम और करुणा का काव्य कहा है किन्तु यत्र-तत्र कपट और चतुर लोगों पर व्यंग्य किया है-

"छाँड़ि कपट कलंक जग में, सार साँचौ एहु।

जुगलप्रिया बनचित्र चातक, स्याम स्वाति एहु।"[24]

भक्ति आन्दोलन के काल में लौकिक संस्कृत में अनेक कवयित्रियों की रचनाएँ भी मिलती हैं, जिनमें प्रमुख है- सुभद्रा, प्रभुदेवी, बिज्जा, मरूला, अवन्ति, सुन्दरी आदि। बारहवीं शती का एक गीत काहे को ब्याही विदेस रे लखिया बाबुल मेरे आज तक लोक जिव्हा पर चढ़ा हुआ है। इस प्रकार भक्ति कालीन काव्य में स्त्री विमर्श के स्वर मुखरित हुए है। भक्ति काल में महिला लेखिकाओं की कमी नहीं थी। उन्होंने उस समय समाज में घट रही घटनाओं और नारी की स्थिति का सटीक वर्णन किया है।

रीतिकाल में स्त्री विमर्श-

रीति कालीन कवियों में केशवदास, मतिराम, भिखारीदास, सेनापति, पद्माकर, भूषण, घनानन्द, देव एवं बिहारी के नाम अग्रगण्य हैं। रीतिकालीन कवियों ने काव्यांगों-रस, रीति, छन्द, अलंकार, काव्यदोष- गुण, कवि-भेद, कवि प्रसिद्धियों, काव्य-वृत्ति, नायक-नायिका भेद, रसावयवों, स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव, काव्य उद्देश्य के साथ-साथ नखशिख वर्णन एवं आंगिक सौन्दर्य का वर्णन किया हैं।

रीतिकालीन कवियों की एक बात और महत्वपूर्ण है। वह यह है कि अधिकतर कवियों ने नारी के शक्ति स्वरूपा देवी सरस्वती, गंगा, पार्वती आदि की उपासना एवं आराधना की है। केशव की सरस्वती वन्दना देखें-

"बानी जगरानी की उदारता बखानी जाइ,

ऐसी मति उदित उदार कौन की भई।

देवता प्रसिद्ध सिद्ध रिषिराज तपबृद्ध,

कहि-कहि हारे सब कहि न काहू लई।

भावी, भूत वर्तमान जगत बखानत है,

केसोदास क्यों हूना बखानी काहू पै गई।

पति बनैं चारमुख पूत बनैं पाँच मुख,

नाती बनैं षट मुख, तदपि नई नई।"[25]

पद्माकर की गंगा वन्दना एवं उनके अवतरण का वर्णन देखें-

"विधि के कमंडल की सिद्धि है प्रसिद्ध यही,

हरि-पद पंकज प्रताप की लहर है।

कहैं 'पद्माकर' गिरीस-सीस मंडल के,

मंडल की माल तत्काल अघहर है।

भूपति भागीरथ के रथ की सुपुण्य पथ,

जन्हु जप जोग फल फैल की फहर है।

छेम की छहर गंगा रावरी लहर,

कलिकाल को कहर जमकाल को जहर है।"[26]

रीतिकालीन काव्य में स्त्री विमर्श : श्रृंगारिक भक्तिकाल के बाद रीति काल में नारी के श्रृंगारिक रूप की अभिव्यक्ति हुई। श्रेष्ठ आचार्य रीतिकवि देव कहते है-

अंग-अंग उमड्यों परत रूपरंग नव

जो बन अनुपम अज्वासन उजारी सी।

डगर डगर डगरावति अगर अंग।

जगर-मगर आपु आवति दिवारी सी।"[27]

यहाँ पर नायिका के सौन्दर्य को गत्यात्मक तथा नयनाभिराम दिखाने के लिए 'उमड्यों परत' का प्रयोग है तथा जगर मगर करती हुई दीपावली आँचों के उत्सव को दर्शा रही है अर्थात् स्त्री को भोग विलास का साधन मानकर रीति कवियों ने काव्य रचना की थी। रीतिकालीन काव्य का केन्द्र बिन्दु नारी चित्रण ही था। रीति कवियों के सामने नारी का एक ही रूप रहा है- विलासिनी प्रेमिका का इसलिए नारी का नख शिख चित्रण ही इन काव्यों में दृष्टिगत होता है। स्त्री विमर्श की दृष्टि से रीतिकाल को अन्धकार युग भी कह सकते हैं। रीतिकालीन काव्य घोर विलासिता, कामुकता एवं अन्तर्बाह्य अन्तर्कलहों का युग था। रीतिकालीन काव्य में प्रेम का लौकिक स्वरूप ही प्रधान रहा। प्रेम व्यवहार रीतिकाल के कवियों ने चित्ताकर्षण के लिए लिखा है -

''बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।

सौंह करें, भौंह हँसे, दैन कहे, नटि जाय।

कहत-नटत-रिझत-खिझत-मिलत-खिलत-लजियात।

भरे भौन में करत है, नैनन ही सों बात।"[28] (बिहारी)

रीतिकालीन कवयित्री शेख का रीतिकालीन काव्य में अपना पृथक स्थान है। शेख के कुछ पद देखें-

''रात के उनीदें अलसाते मदमाते राते,

अति कजरारे दृग तेरे यों सोहात हैं।

तीखी तीखी कोरनि करोरे लेत काठे जिउ,

केते भये घायल और केते तलफात है।।

ज्यों-ज्यों लैं सलिल चख सेख धोवै बार-बार

त्यों-त्यों बल बुंदन के बार झुकि जात है।।

कैबर के भाले केधौं नाहर नहनवाले,

लोहू के पियासे कहूँ पानी ते अघात है।"[29]

"बीस विधि आऊँ दिन बारीये न पाऊँ और,

याही काज वाही घर बाँसनि की बारी है।

नेकु फिरि ऐहैं कैहें दै री दै जसोदा मोहिं,

मो पै हठि मांगै बंसी और कहूँ डारी है।

'सेख' कहै तुम सिखवो न कछु राय याहि,

भारी गरिहाइनु की सीखे लेतु गारी है।

संग लाई भैया नेकु, न्यारो न कन्हैया कीजै,

बलन बलैया लैके मैया बलिहारी है।"[30]

"मोती कैसी ढरनि ढरकि आवै नैना नेकु,

तुमै ढौरी लागी जानौ गौरी ढरि आई है।

'सेख' भनि ताकों हाय हाय करौं पाय परौ,

आय बाय ऐसी जीय कैसे करि आई है।

नेह नहीं नैननि सनेह नहीं मन माहिं,

देह नहीं बिकल बियोग जरि आई है।

झूठे ही कहत परबस मरयो जात हौं, सु

परबस नहीं बरबस बरआई है।"[31]

आधुनिक काल में स्त्री विमर्श :

आधुनिक काल के आते आते स्त्री चिन्तन की दिशाएँ बदलती नजर आने लगी। एक क्रान्तिकारी परिवर्तन दिखायी देने लगा। आधुनिक काल की प्रगति तक पहुँचने के लिए नारी को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष करना पड़ा, यूरोप में फ्रांसीसी क्रान्ति के दौरान और उसके बाद स्त्री जागरूकता का विस्तार होना शुरू हुआ और शताब्दी के अन्त तक इंग्लैंड, फ्रांस तथा जर्मनी के बुद्धिजीवियों ने नारीवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक रूसी सुधारकों के लिए महिला प्रश्न एक केन्द्रीय मुद्दा बन गया था। भारत में भी खासतौर से बंगाल और महाराष्ट्र में समाज सुधारकों ने समाज में फैली बुराइयों पर आवाज उठाना शुरू कर दिया था। तद्‌युगीन समाज में व्याप्त कुरीतियों - बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा तथा सती प्रथा के विरोध में अनेक आन्दोलन चलाये गये तथा स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह पर जनमानस में जागृति पैदा होने लगी। यह परिवर्तन हिन्दी साहित्य में परिलक्षित होने लगी। इसी काल में स्त्री शिक्षा, स्त्री सशक्तिकरण, स्त्री मुक्ति आदि विषय काव्य के केन्द्र में रहे।

भारतेन्दु युग के काव्य में स्त्री विमर्श :

भारतेन्दु युग में नारी शिक्षण, विधवाओं की दुर्दशा आदि को लेकर सहानुभूतिपूर्ण कविताएँ लिखी गयी, जिन्होंने समाज सुधारकों को विशेष रूप से आकृष्ट किया। भारतेन्दु, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र आदि कवियों ने स्त्री चिन्तन की ओर अपने कदम बढ़ाये और स्त्री पर होने वाले अत्याचारों का खंडन किया। प्रतापनारायण मिश्र ने बालविधवाओं की करूण दशा का वर्णन इस प्रकार किया हैं-

कोन करे जो नहिं कसकत सुनि विपति बाल विधवन की।"[32]

भारतेन्दु युग स्त्रियों की स्थिति में सुधार की दृष्टि से क्रान्तिकारी युग रहा।

द्विवेदी युग के काव्य में स्त्री विमर्श :

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर रखे गये इस काल के प्रमुख कवि नाथूराम शर्मा द्वारा रचित गर्भरण्ड रहस्य में विधवाओं के कष्टमय जीवन का बड़ा मार्मिक चित्रण मिलता हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त कृत साकेत केवल उर्मिला को ही नहीं उपेक्षित नारी जाति को ध्यान में रखकर लिखा गया है। उनके नारी पात्र उर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया आदि पारिवारिक मर्यादाओं को तोड़कर जिन्दगी को उसकी असलियत के साथ जीने के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं। विष्णुप्रिया कहती है- सहने के लिए बनी है सह तू दुखिया नारी।"[33]

साकेत में उर्मिला के माध्यम से तत्कालीन स्त्री की दशा का प्रस्तुतीकरण है तथा स्त्री के त्याग की उच्चतम भावना का कथोपकथन बुद्ध की पत्नी यशोधरा को बिन बताये जंगल में चले जाने के प्रसंग में यशोधरा सखी से कहती है, सखि वे मुझसे कहकर जाते, कहते तो क्या मुझको वे अपनी पथ बाधा ही पाते?"[34] हरिऔध कृत प्रिय प्रवास में कवि ने स्त्री को विश्व सेविका के रूप में दिखाया है। राधा सम्पूर्ण विश्व में कृष्ण की कान्ति के दर्शन कर विश्व प्रेमिका और विश्व सेविका बन जाती है।

श्रीधर पाठक की 'बालविधवा' नामक कविता विधवाओं की व्यथा का करुणाजनक आख्यान है। स्पष्टतः यह दृष्टिगत होता है कि द्विवेदी युग के कवियों ने अपने क्रान्तिकारी विचारों से नारी जागृति के विषय को आगे बढ़ाया।

छायावादी काव्य में स्त्री विमर्श :

छायावाद में स्त्री मुक्ति की आहटें स्पष्ट सुनायी देती है- पन्त, निराला, प्रसाद और महादेवी के रचनाकर्म में। पल्लव की भूमिका में रीतिवाद, नायिका भेद, अलंकार, रीति के विरुद्ध पन्त की प्रतिक्रिया कविता और भाषा की नयी मुक्ति का ही संकेत है। ''स्त्री पुरुष सम्बन्ध की नवीनता घोषित करने के लिए उनकी यह नयी सादगी ही काफी थी, बालिका मेरी मनोरम मित्र थी। निराला की नारी निराश पुरुष के हृदय में

आशा का संचार करने वाली है- ऐसा क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत जगी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत।"[35]

जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में इड़ा और श्रद्धा के माध्यम से स्त्री चिन्तन को आगे बढाया। मनु के श्रद्धा को छोड़ जाने पर स्त्री पुरूष के अधिकारों की समानता की बात भी प्रसाद जी ने उठायी है। नारी के अधिकार तथा उसके अस्तित्व का बोध कराती यें पक्तियाँ-

मनु तुम श्रद्धा को गये भूल,

उस पूर्ण आत्मविश्वासमयी को उड़ा दिया था समझ तूल।

तुम भूल गये पुरूषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।

समझता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।"[36]

महादेवी की कविताओं में आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ लोक कल्याण की भावना भी विद्यमान है। महादेवी स्वयं साधना की आग में जलकर सामाजिक जीवन की अधिक सुखद और मंगलमय बनाना चाहती है-

दुख प्रति निर्माण उन्माद

ये अमरता नापते पद

बाँध देगें अंक संस्कृति से तिमिर में स्वर्ण बेला।"[37]

कहना उचित ही होगा कि छायावादी काव्य जहाँ प्रणय को जीवन की यथार्थ विषम व्यापकता में सँजोने का प्रयास करता है, वहीं नारी को मानवी मानने वाला काव्य है। स्त्री के शरीर से ऊपर उठकर उसके आन्तरिक सौन्दर्य का उद्घाटन छायावादी काव्य ने किया। छायावाद में रोमांटिक और क्लासिक संवेदना का कई बार एक साथ अन्तर्भाव है, वहाँ ऐतिहासिक विजन भी है, वर्तमान का संघर्ष भी और भविष्य का स्वप्न भी।

छायावादोत्तर काल के काव्य में स्त्री विमर्श :

छायावादोत्तर काव्यधारा प्रगतिवाद साहित्य को सौद्देश्य मानता है। सौद्देश्य का अर्थ है- किसी विशेष अभिप्राय से, किसी विशेष दृष्टि से कला की रचना करना। प्रगतिवाद का उद्देश्य कुरूप, शोषक, सड़ी गली विसंगतिग्रस्त शक्तियों का पर्दाफश और नयी सामाजिक शक्तियों के संघर्षों का पोषण रहा है, जिसने नारी को अन्धविश्वासों, परम्परागत रूढ़ियों और मान्यताओं से मुक्त कराने का निरन्तर प्रयत्न किया है। प्रगतिवादी कवियों ने नारी के यथार्थ का चित्रण किया है। बिना कल्पना का सहारा लिए। वे मानते थे कि स्त्रियाँ भी पुरूषों के साथ दिन-रात आर्थिक, सामाजिक विषमताओं का सामना करती है। वह तोड़ती पत्थर में ऐसी ही नारी का चित्रण हमें मिलता है-

वह तोड़ती पत्थर,

देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर।

वह तोड़ती पत्थर

कोई न छायादार

पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,

नत नयन, प्रिय-कर्म-रत-मन

गुरू हथौड़ा हाथ,

करती बार-बार प्रहार,

सामने तरू-मालिका अट्टालिका, प्राकार।"[38]

महादेवी वर्मा का कथन है, आज हिन्दू स्त्री भी शव के समान ही निस्पन्द है। संस्कारों ने उसे पक्षाघात के रोगी के समान जड़ कर दिया है। अत: अपने सुख दुख को चेष्टा द्वारा प्रकट करने में भी वह असमर्थ है।"[39] महादेवी 'मैं नीर भरी दुख की बदली' कविता में इस प्रकार व्यक्त करती है-

परिचय इतना, इतिहास यही

उमड़ी कल थी मिट आज चली।"[40]

महादेवी के प्रेमानुभूतिपरक गीतों को हम ऐतिहासिक धारावाहिकता तथा तद्‌युगीन नारी चेतना से काटकर नहीं समझते। अनामिका भी इसी बात को पुष्ट करती है, महादेवी वर्मा के कई गीत रहस्यवादी स्वरूप खंडन करते हुए उन्हें प्रखर स्त्रीवादी विद्रोह का तेज देते है।"[41]

प्रयोगवादी कवि में अज्ञेय का अपना ही स्थान है। वे नारी को मल्ल-युद्ध करने की चुनौती देते हुए दिखते है-

"तोड़ दूंगा मैं तुम्हारा आज यह अभियान!

तुम हंसो, कह दो कि अब उत्संग वर्जित है।

छोड़ दूँ कैसा भला मैं जो अभीप्सित है?

कोखवत्, सिमटी रहे यह चाहती नारी-

खोल देने, लूटने का पुरुष अधिकारी।"[42]

प्रयोगवाद के उपरान्त आया प्रगतिवाद और नयी कविता का युग। प्रयोगवादी कवि मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन की समस्त जड़ता, कुंठा, अनास्था, पराजय और मानसिक संघर्ष के सत्य को बड़ी बौद्धिकता के साथ उद्‌घाटित करते है। फ्रायड का काम सिद्धान्त इनके लिए प्रधान जीवन दर्शन बन गया। नयी कविता की मुख्य प्रवृत्तियों में एक भोगवाद और वासना भी है। अज्ञेय की पंक्तियों को देखें-

आह मेरा श्वास है उतृप्त,

धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार

प्यार है अभिशप्त

तुम कहाँ हो नारी।"[43]

नारी के प्रति ये पक्तियाँ अश्लील टिप्पणी मात्र है। इनके अतिरिक्त नयी कविता में श्रीकान्त वर्मा, रघुवीर सहाय, लीलाधर जगूड़ी, चन्द्रकान्त देवताले आदि भी हैं जिन्होंने स्त्रियों को केन्द्र में रखकर काव्य रचना की। तदुपरान्त का समय समकालीन कविता का है। समकालीन कविता के अन्तर्गत 1960 के बाद के वर्तमान समय तक की कविता को स्थान दे सकते है। कविता तथा अन्य सृजनात्मक क्षेत्रों में नारी की स्वतन्त्रता पर बल देने वाला स्वर आज बुलन्द है। इसके पीछे स्वतन्त्रता हनन के विरूद्ध संघर्ष की अदम्य इच्छा है। शताब्दियों से नारी के प्रति हो रहे शोषण को नारीवाद ने प्रोत्साहन दिया। समकालीन कवयित्रियों की कविताओं पर विचार करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस दिशा में कवियों का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनकी कविताओं में भी स्त्री सत्ता के ऊपर पुरूष अधिष्ठित वर्चस्व को व्यापक अर्थ में ही लिया गया है। स्त्री के प्रति निरी सहानुभूति व्यक्त करना ही उनका उद्देश्य नहीं है, बल्कि पिछड़ेपन को सुरक्षित रखने वाली पूँजीवादी दृष्टि के अन्तर्गत इन कवियों ने स्त्री और उनकी बेबसी को भी देखा है।

समकालीन कविता को दिशा देने वाले रघुवीर सहाय की दो छोटी-छोटी कविताओं का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है, जिनको उन्होंने मात्र स्त्री की उपेक्षा के प्रति सहानुभूति दर्शन की दृष्टि से नहीं लिखा है बल्कि शब्द प्रयोग में निहित उनकी व्यंग्यात्मकता मानवीय मुक्ति की परिणति है-

किसी मूर्ख की हो परिणीता

निज घर बार बसाइए।

होय कंटीली

आँखें गीली

तड़ी सीली, तबीयत ढीली

घर की सबसे बड़ी पतीली

भरकर भात पसारिए।"[44]

इसमें जो व्यंग्य है, वह स्त्री जाति पर पड़ता है और यही उसकी विशेषता है। एक दूसरी कविता नारी स्त्री की समूची स्थिति को स्पष्ट करती है-

नारी बिचारी

पुरूष की मारी

तन से क्षुधित

मन से मुदित

लपककर झपककर

अन्त में चित।"[45]

यहाँ कवि स्त्री को करूणा और आर्द्रता में भिगोकर प्रस्तुत नहीं कर रहे है, बल्कि यथार्थ दृष्टि से उसे शोषण में चरमराने के लिए बाध्य करते है। एक बेसिलसिला बातचीत में एक बूढ़ी औरत की ओर इशारा करते भगवत रावत कविता की शुरूआत इस प्रकार करते है-

मेरे शहर के बीच बाजार

एक ऊँचा टूटा दरवाजा है

जिसके नीचे से

हर शाम

सारा शहर गुजर जाता है

उसके आसपास

घूमती पागल बुढ़िया।"[46]

'प्रार्थना के शिल्प' में नहीं शीर्षक संकलन में स्त्री के स्वालम्ब को करीब से देखकर लिखी गयी देवीप्रसाद मिश्र की कविताएँ अलग प्रभाव छोड़ती है। यहाँ एक

कविता में औरतें यहाँ नहीं दिखती- स्त्री के निजी संसार के विभिन्न कोणों, गलियों और अन्तरियों की कविता में प्रस्तुत करके उसको वहाँ पाने की बात कही है-

औरतें यहाँ नहीं दिखतीं
वे आटे में पिस गयी होगी
या चटनी में पुदीने की तरह महक रही होगी
वे तेल की तरह खौल रही होगी, उनमें
घर की सबसे जरूरी सब्जी पक रही होगी
गृहसी श्रम की झाड़ू बनकर
अँधेरे कोने में खड़े होकर
वे घरनुमा स्थापत्य का मिट्टी होना देखती होगी
तिलचट्टों सी वे कहीं घर में दुबकी होगी वे
घर में ही होगी
घर के चूहों की तरह वे
घर छोड़कर कहाँ भागेगी।"[47]

विवेच्य कविता नारी जीवन की असलियत का ब्यौरा दे रही है। वर्जीनिया बुल्फ के विचारों की प्रासंगिकता यहाँ दिखती है। एक कमरे की आवश्यकता, चारदीवारी की आवश्यकता न होकर व्यक्तित्व विकास के सही वातावरण से सम्बन्धित है। यहाँ औरत घर में रहकर भी अपने सही परिवेश सहित नहीं है। परिवेशविहीन होना जीवन में धुरीहीन होने के बराबर ही है। घर में चूहे की तरह है वे, इसलिए भाग नहीं सकती, न छोड़ सकती है। स्त्री के स्वत्व विघटन, उसकी बेबसी को कवि ने प्रभाव पूर्ण ढंग से अभिव्यक्ति दी है। प्रयाग शुक्ल की कविता उसका चेहरा

में एक ऐसी स्त्री मौज़ूद है, जो जीवन में दुख-दर्द होने के बावजूद भी हँस रही है। कवि को स्त्री के दुख-दर्द में अपने जीवन की पीड़ा दिखायी देती है-

उसके चेहरे में बसी है

एक पीड़ा, वह हँसती है तो

वह और उभर आती है

कितना कम जानता हूँ

उसे

नहीं नहीं चेहरे को नहीं, उस पीड़ा को

जो मेरी भी है। [48]

जीवन और समाज की वास्तविकताओं, दूषित व्यवस्था के प्रति विद्रोह, स्त्री के प्रति होने वाला शोषण ही समकालीन कवियों की कविताओं का कथ्य रहा हैं, इस सन्दर्भ में मंगलेश डबराल की कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है, जो एक स्त्री के शोषण को चित्रित करता है-

किसी चट्टान के पीछे

सन्नाटे में एकाएक स्त्री सिसकती है

अपनी युवावस्था में

अगले ही दिन आने वो

बुढापे से बेखबर।"[49]

स्त्री की शोषण कथा उसमें जीवन के यथार्थ चित्रण के साथ-साथ आज भी पुरूष वर्ग एक लड़की के प्रति क्या सोच रखता है- इसे समकालीन कवि उमाशंकर चौधरी अपनी कविता में समझाते है-

हर लड़की को वह सिर्फ

खेलने और खाने की वस्तु समझता था

उनके लिए वह माल शब्द का प्रयोग करता था

उन्हें देख सीटी बजाता था

पास से गुजरने वाली लड़की के लिए वह

एक लम्बी साँस अन्दर की ओर लेता था

ऐसे जैसे वह उसे एकबारगी

पी जाना चाहता हो।"[50]

ऐसी अनेक कविताएँ हैं जिनमें कवियों ने नारी के स्वत्व-विघटन का अनुभव कराने के लिए कवि धर्म को सफलतापूर्वक निभाया है, जो निरी सहानुभूतिवश संरचित नहीं है। दरअसल उनका मुख्य प्रतिपाद्य मानवीय सरोकार है और नारी समस्या भी मानवीय सरोकार का पक्ष है। स्त्री विमर्श के सन्दर्भ में चन्द्रकान्त देवताले की कविता 'औरत का हँसना' की ये पंक्तियाँ कवि के सघन अनुभव को अभिव्यक्त करती है।-

सचमुच औरतों का हँसना

कई बार परदे की तरह होता है

अमूमन प्रारम्भ और अन्त के बीच

मध्यान्तर में गिरे परदे की तरह।"[51]

कवि एक ऐसी स्त्री का महावृतान्त बना रहा है, जिसके दुखों की महागाथा अथाह है कि छोटे बड़े मामूली, गैर मामूली आशयों से सीमित कविता में अट नहीं पा रही है। कविता को पढ़ते-पढ़ते कई चेहरे क्लोजअप में उभर कर आ रहे है। विष्णु नागर त्रासद और विनोदपूर्ण तनाव की गहरी समझ के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु स्त्री विषयक पाठक के लिए कविता उसे यकीन था विचारणीय है। कविता के बारे में इतना कहना कठिन है कि यह स्त्रीमुक्ति के प्रसंग में जारी किया गया बखान है या स्त्रीमुक्ति के अन्तर्विरोधों की ही अन्त:कथा है। कविता कई प्रकार के प्रश्न उठाती है-

स्वतन्त्रता क्या केवल चयन की स्वतन्त्रता है या उससे अधिक। क्या कोई भी सामाजिक या समाजशास्त्रीय, अर्थशास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक अवधारणा इस स्वतन्त्रता के भीतर छिपे अन्तर्द्वन्द्व तथा तनाव की व्याख्या कर सकेगी-

उसने कहा आओ सहेलियों, हौंसला करो, उड़ो

उसे यकीन था कि उसकी सहेलियाँ भी कबूतर हैं

उड़ेंगी

उसकी मजबूत दाँत वाले चूहों से दोस्ती थी

फिर भी उसने सहेलियों को सावधान किया कि

जहाँ दाना होगा, वहाँ जाल भी हो सकता है

सँभल के रहना

वह उड़ी और उसे यकीन था कि उसकी सहेलियाँ भी उड़ रही हैं।"[52]

यहाँ कविता अपने आवयविक संगठन में एक सम्पूर्ण सुंगठित निर्मिति की तरह है, जिसमें विचारधारा, कल्पना, संवेदना का रचाव घुलामिला है। पंक्ति-जहाँ दाना होगा, वहाँ जाल भी हो सकता है अर्थगाम्भीर्य लिए हुए है। युवा कवि बोधिसत्व की लघु कविता 'वहाँ औरतें' औरत की रची बसी जिन्दगी की अन्दरूनी स्थितियों की तरफ कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देती है-

वहाँ औरतें बरतन माँजकर

लेऊ लगा रही हैं

वहाँ औरतें धो और सुखा रही हैं केश

गाछ रही हैं चोटियाँ भर रही हैं पावँ

लेप रही हैं दुख के गलके पर

नोना-माटी

पूछ रही है कुशल क्षेम
वहाँ औरतें लड़ रही हैं,
 कर रही है विलाप,
बच्चों की खातिर
जो चले गये हैं कहीं
वहाँ औरतें
बहा और पोंछ रही हैं आँसू।"[53]

कविता में औरतों के पूरे संसार का प्रस्तुतीकरण हैं, जिसमें कुशल क्षेम की बातें, केश सुखाने का उपक्रम होते हुए भी उनके सुख का अनावरण अधिक हुआ है। दुख को दिखाया नहीं गया है, जबकि उसका अनुभव किया गया है। जहाँ तक समकालीन कवयित्रियों की बात करें तो उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी संघर्ष एवं मुक्ति विचार को व्यापकता के साथ जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है। उनकी निजी भाषा उस वर्ग की निजी भाषा में रूपान्तरित होती है। साथ ही साथ स्वीकृत स्थितियों के कई प्रकार के आवरणों को तोड़ने का कार्य भी इन कवयित्रियों ने किया है। कात्यायनी, नीलेश रघुवंशी, गगन गिल, सविता सिंह, प्रभा खेतान, निर्मला गर्ग, अनामिका आदि नाम इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

समकालीन काव्य में स्त्री विमर्श-

समकालीन कविता के महिला लेखन के परिदृश्य में कात्यायनी का नाम महत्वपूर्ण है। इनकी कविताओं में नारी अथवा नारी मुक्तिवादी दृष्टि है। स्त्री को स्त्री तक सीमित करने वाली दृष्टि नहीं। वह एक सीमित कठघरा नहीं है। मात्र लिंग संदर्भी वर्चस्व से स्त्री को मुक्त कराने की इच्छा ही उनमें प्रस्फुटित नहीं होती, बल्कि मानव मात्र को मुक्त करने की सांस्कृतिक दृष्टि के रूप में उनकी इन कविताओं में नारी मुक्तिवादी दृष्टि विकसित हुई है। दाहक जीवन दाह कविता में कात्यायनी ने

अपनी स्वातन्त्र्येच्छा को स्त्री के बहाने बखूबी प्रस्तुत किया है। धरती की तलाश से सम्बन्धित यह कविता समकालीन हिन्दी कविता का एक तेजदीप्त इशारा है-

जिन्दगी की सरहदों में

लापलपाती रहती हैं

अग्नि की लाल जिह्विाएँ

मृत्यु में ही मुक्ति

देखती है स्त्री

मृत्यु प्रदेश में प्रवेश के पूर्व

एक बार पीछे मुड़कर देखती है स्त्री

जीवन की ओर

वहाँ सब कुछ शान्त है

मृत्यु की ओर

स्त्री के

प्रस्थान के बाद

स्त्री पीछे मुड़ती है

प्रचंड वेग के साथ

अपने हाथों आग लगा देती है।

राख कर देती है

वह सब कुछ

जिसे लोग कहा करते है

भरा-पूरा जीवन।"[54]

प्रस्तुत कविता का इशारा नारी की मुक्ति के सन्दर्भ में भी प्रासंगिक है और मानवीय मुक्ति के सन्दर्भ में भी। शब्दों के विन्यास और चयन में जिस सन्तुलन को बनाये रखने का कार्य कात्यायनी ने किया है, वह मुक्तिपथ की यात्रा और तजन्य मानसिकता के अनुरूप है।

अपरिचित उजाले संकलन कविता:

'मेरी जरूरत' शीर्षक की संक्षिप्त भूमिका में प्रभा खेतान लिखती है, कविता मेरी जरूरत है, एक रिलीज, मेरे व्यक्तितत्व की एक अभिव्यक्ति है। दूसरे, प्रकाशन के पीछे मेरी केवल एक ही इच्छा है कि मैं उन सबके साथ जो मेरी ही तरह साधारण है, कुछ अपनी बात कर सकूँ कवयित्री ने उन साधारण लोगों में स्त्री की असलियत को देखा है, जो हमारे आस-पड़ोस की ऐसी वास्तविकता है, जिसका यथार्थ एकायामी नहीं है। आखिर कब तक लटकी रहूँ, शीर्षक कविता में कवयित्री ने निरर्थकता के अहसास को बलपूर्वक चित्रांकित किया है। वास्तव में इसी अधूरेपन के अहसास से प्रभा खेतान ने स्त्री के अस्तित्व को पहचाना है-

सारी-सारी शाम, सूखते कपड़ों सी बरामदे में
प्रतीक्षा करूँ, तुम्हारे आने की
एक क्षण से
दूसरे क्षण तक। "[55]

इसमें प्रतीक्षा प्रतीकात्मक है, प्रतीक्षा है जागृति की समग्रता की। समकालीन कविता की यही नारी दृष्टि है कि उसमें अपनी पहचान की धरती है, जहाँ हजारों बीज सोये पड़े हैं, जो अंकुरित हो सकते है। पर वह चारदीवारी के अन्दर के नियमों के अनुसार उसके जड़ साँचे में ढलकर प्रफुल्लित नहीं होना चाहती। घरेलू यथार्थ के भीतर स्त्री की वास्तविकताएँ, भोग की वास्तविकता में बदलती है। उस पर पारिवारिकता का सनातन आवरण डाला जाता है। परन्तु प्रभा खेतान अपने को उस

गमले की कृत्रिमता से कँटीली झाड़ी अकृत्रिमताओं में परिणत देखना चाहती है। उनमें निहित बीज की यह इच्छा है-

मैं तो एक कँटीली झाड़ी

एक जंगली पेड़

हवाओं से बतियाती

भीड़ से अलग

तुम्हारे चौराहों से दूर

खुद एक सर्पीली पगडंडी बनाती हुई। [56]

यह कविता पुरूष विरोधी न होकर मानवीय सहजता के महत्व को अधिक दर्शाती है। हिन्दी में स्त्रियों द्वारा लिखी जा रही कविताओं में देह दमन अधिक दिखता है जो कि स्त्रीत्ववाद का पहला चरण है। गगन गिल की कविताओं में भी देह का स्वीकार, देह का कथन और देह का अर्जन और क्रन्दन है। नारी केन्द्र के लिए यह महत्वपूर्ण है, क्योंकि देह का दावा, देह का उत्सव, स्त्रीत्ववादी अनुभवों और रचनाओं की वह चौंकाने वाली ताकत है, जहाँ से स्त्रीत्ववादी रचना स्त्री के बलीकरण तक जाती है। देह के स्वीकार से ही देह राजनीति या कहें बायो पालिटिक्स"[57] शुरू होती है। 'जिस एक काँटे से' शीर्षक वाली कविता में स्त्री देह कुछ इस तरह दावा पेश करती है।

जिस एक काँटे से, बचने के लिए

तैरती रही मछली, समुन्दर पर समुन्दर

उसकी देह में छिपा था।"[58]

यहाँ से सैक्सुअलिटी का नया दावा शुरू होता है। यह एक स्त्रीत्ववादी विचार है, मर्दवाद को डिसरप्ट करता हुआ और स्त्री देह को डिफाइन करता हुआ। काँटा उसकी देह में ही छिपा है। फैसले के प्रति यह एक खामोश दावा है स्त्री के होने के

कथन का दावा। स्त्री देह एक दुख है। उसका अर्जन ही दुख की व्याख्या है, प्रतिरोध है। स्त्री की देह के अर्जन में ही उसकी मुक्ति है। गगन की यह कविता देह का अपना विमर्श बनाती है-

यहाँ छिपेगी वह

कंकाल में अपने

युवा छबि से बचकर

यहाँ धँसेगी

वह संसार से अपने

आत्मा से छिपकर

नोच डालेगी

यहाँ विचित्रता

देह और स्वत्व।"[59]

पहली उदधृत कविता में अपनी स्त्री देह है जबकि दूसरी कविता में दमन है उस दूसरी देह का, जो मर्दों ने सदियों से बनायी हैं। दूसरी देह को नष्ट कर अपनी देह का दावा करना ही अपने आप में आना है। स्नेहमयी चौधरी की एक कविता है- 'गान्धारी बड़े शहर में', जिसमें सबसे पहले गान्धारी का चरित्र पक्ष विन्यासित होता है। इसका उद्देश्य यह नहीं है कि नाम में निहित पौराणिकता के आवरण को तोड़ा जाये। संकल्प के बदले हुए स्वर के साथ स्वत्व की खोज की आकांक्षा इस कविता में मुखर होती है-

''सारी रात, गान्धारी

पन्ने पलटती रही।

पौराणिक मिथक की खोज में।

साढ़ें पाँच बजे

सुबह हुई

पानी की तेज धार को धीमा करती

फिर चक करती

कहीं बर्बाद तो नहीं हुआ पानी

फिर टैप बन्द कर

अन्दर के टैप को खुला छोड़

उसकी पतली आवाज को सुनने के लिए

कान लगा रही

पर

सुनायी पड़ती रही

पत्तों की सरसर

फिर कौओं की काँव-काँव

और

साथ ही मुर्गे ने बाँग दी

जगाया पूरी तरह

एक आँख के ऊपर

पट्टी जो बाँधी थी

उस राहगीर के

अपनी दोनों आँखों के सामने

बाँध ली उसने

चल पड़ी

नये युद्ध की पुकार सुनने

जो आँख खोलकर केवल सुनी जा सकती थी

और चुपचाप सही जा सकती थी

बेकार

न्याय-अन्याय के झगड़े में कौन पड़े,

सोच

कुछ थोड़ा ठिठककर

फिर भी आगे बढ़ती

ढेर सारे कामों की सूची पढ़ती।"[60]

गान्धारी जैसे पात्रों के प्रयोग से कविता का अर्थस्तर विस्तृत हो गया हैं। साथ ही उसमें लिप्त मोहपाश भी तोड़ दिया है। पूरी तरह से अपने में व्यस्त, बेबसियों में गिरफ्तार, परेशानियों में मग्न गान्धारी का एक रोजमर्रा पहलू भी है। ये दोनों एक-दूसरे से भिड़कर अग्रसर होते है। जिनसे आज की नारी की सही स्थिति का खुलकर अहसास होता है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय परिवेश में अत्यन्त तीव्रता से बदलाव आया, जिसके कारण जीवन मूल्यों को चिन्तन के आयामों में भी व्यापक प्रभाव पड़ा। विदेशों में होने वाली नारी मुक्ति आन्दोलन का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। नारी की अस्मिता की पहचान की कोशिश की गई। नारी के प्रति दिन रात बढ़ते अन्यायों ने नारी की चेतना को झिंझोड़कर रख दिया। इसकी तीखी अभिव्यक्ति आत्मदान में अहिल्या के माध्यम से की गयी है-

"तुम देवों ने

वैदिक कर्महीन किया नारी को

धर्मशास्त्रों की व्यवस्थाएँ बदली

स्व-अनुरूप

स्त्रियाँ 'इन्द्रिय शून्य' हुई

घोर असंशयी

शास्त्रज्ञान से रहित असत्य की मूर्ति निपट

ये सभी विशेषण अभियोग सदृश

दिये पुरुषों ने आकाश ने भोगा एकछत्र अखण्ड राज्य

किन्तु धरती को

बांटा खण्ड-खण्ड में।"[61]

अग्निलोक की सीता अपने आपको मुक्त घोषित कर देती है। आज तक वह दूसरों के संकेतों पर चलती रही अपनी निष्ठा की चादर ओढ़े, अपना प्रेम का दीपक जलाए, किन्तु निर्मम सत्य ने उसकी आँखों पर से झूठ का पर्दा उठा दिया-

"क्या वह विद्रोह नहीं कर सकती

उस पूरी व्यवस्था के खिलाफ

जिससे उसका जीना

एक यन्त्रण से अधिक

और कुछ नहीं है।"[62]

सीता की भांति द्रौपदी ने भी हिम परीक्षा का विरोध करते हुए पार्थ से कहा-

"मेरी यह हिम परीक्षा

तुम क्यों लेना चाहते हो

सीता की अग्नि परीक्षा से

राम को ही क्या प्राप्त हुआ

जो तुम

अपनी कृष्णा की हिम परीक्षा ले रहे हो पार्थ

प्रत्येक ऐसी परीक्षा

पत्नी के प्रति अविश्वास ही है

और ऐसी परीक्षा के बाद

नारी

पुरुष के लिए अप्राप्य हो जाती है।"[63]

हिन्दी कविता की परिधि आज बढ़ती जा रही है। फिर भी कविता का संकटकाल कहकर कुछ लोग चिल्ला रहे है। इस संकट की स्थिति में कविता और पाठक को मुक्त कराने के लिए कई ऊर्जावान और प्रखर कवि कार्यरत है। इन सब में विषयवस्तु की व्यापकता और अनुभव की विविधता देखने को मिलती है। स्त्री की अस्मिता के लिए संघर्ष करती एक ऐसी ही कवयित्री है- सविता सिंह। सविता सिंह ऐसे अनुभवों का पीछा करती है, जो प्रत्यक्ष कम है, अनेक बार अदृश्य रहते है, कभी-कभी सिर्फ अपना अँधेरा फाँकते है और न कुछ जिसे कहते है। इसी ने कुछ में से बहुत कुछ रचती इस कविता के पीछे एक बौद्धिक तैयारी है लेकिन वह स्वत: स्फूर्त ढंग से व्यक्त होती है और पिकासो की एक प्रसिद्ध उक्ति की याद दिलाती है कि कला खोजने से ज्यादा पाने पर निर्भर है। प्रकृति के विलक्षण कार्यकलाप की तरह अनअस्तित्व में अस्तित्व को सम्भव करने का एक सहज यत्न इन कविताओं का आधार है।"[64] स्त्री सच है, कविता की इन पंक्तियों को देखें-

चारों तरफ नींद है

प्यास है हर तरफ

जागरण में भी

उधर भी जिधर

स्वप्न जाग रहे है

जिधर समुद्र लहरा रहा है।"[65]

इन पंक्तियों में एक स्त्री का निरन्तर और अनन्त संघर्ष ही अभिव्यक्त है। यहाँ स्त्री दीन बनी अपने दुख का बखान नहीं करती, बल्कि स्थितियों में विन्यस्त रूपक उसके होने के यातनापूर्ण अर्थ को सूचित करते है। सविता के यहाँ स्त्री का एक प्रतीक भर नहीं है, और न ही वह समाज की एक इकाई मात्र वरन वह हमारी

सभ्यता का आदि बिन्दु है। यही कारण है कि सविता के स्त्री विमर्श में समूचे जगत प्रपंच का संवाद शामिल हो जाता है।

लेखन के सशक्त माध्यम से स्त्री अपनी पहचान के लिए समाज में प्रयासरत है, संघर्षरत है। कवयित्रियाँ पुरूष-विरोधी मानसिकता से परे पुरूष में एक सच्चे साथी की तलाश करती हैं। स्त्री विमर्श का एक मुख्य मुद्दा यह भी है, कविता का सच ऐसा ही है, जिसे कहने से लोग हिचकिचाते है-

लड़कियाँ जो पुल होती है

पैदा की नहीं जाती

अक्सर पैदा हो जाती है

लड़का पैदा होने के धोखे में।"[66]

समीक्षक भरत प्रसाद कहते है- कहना जरूरी है कि संवेदना के कलाकार के पास आत्मविश्वास है, दृढ़ता है, सजग आँखें है और गहरे रचनात्मक संकल्प भी है। उनमें अकेले खड़े रहने का साहस भी कुछ कम नहीं है। अगर...मगर ...इतना साहस काफी नहीं है, दुस्साहस चाहिए।"[67] एक तरह से कहा जाये तो पुरूष वर्चस्व को खत्म करने के लिए स्त्रियों के पास हिम्मत और दुस्साहस का होना जरूरी है।

एक आक्रोशयुक्त आग्रह स्त्री का अपनी पहचान के प्रति शुभ की कविता प्रेम की इच्छा में दिखायी पड़ता है। वह स्त्री की इच्छा को इस प्रकार व्यक्त करती है-

"मैं चाहत हूँ

नोटिस लिया जाये इस बात का

कि मैं यहाँ हूँ, धरती पर

एक साधारण लड़की जिसमें खलबला रही है

एक असाधारण लड़की

पक्षी की तरह डैने फैलाये।"[68]

स्त्री विमर्श ने कई पुरानी रूढ़ियों को ध्वस्त कर दिया है। आज की स्त्री घर की सुरक्षा धारणा को नहीं स्वीकारती है। वह अपनी स्वतन्त्रता और विकास की राह में उसे बन्धन मानती है। मंजु गुप्ता की कविता पढ़े तो कवयित्री को घर प्रतिभा का मकबरा नज़र आता है-

"घर बचाने के लिए जरूरी है

थकी वह नारी अपनी बुद्धि

बाहर पायदान पर उतारकर

घर में प्रवेश करें।"[69]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि अगर नारी को परिवार संस्था को जीवित रखना है तो स्व-निर्णय की क्षमता को मारना होगा। एक कठपुलती की तरह सिर्फ पुरूष की हाँ में हाँ मिलाते चलना होगा। घर की चक्की में अनवरत पिसते रहना स्त्री की विडम्बना है। वह चाहकर भी उससे मुक्त नहीं हो पाती। स्त्री जगत के इन्हीं सच्चे अनुभवों को नीलेश रघुवंशी ने शब्दबद्ध किया है-

"गर्भवती स्त्री और शिशुपालन जैसी किताबें पढ़ती हूँ इन दिनों

ढेर सारे नाम खोजती हूँ

हर दिन दूध वाले की जान खाती हूँ

दिन-भर इन्हीं चकल्लसों में उलझी रहती हूँ

फिर भी काम है कि खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहे।"[70]

वर्तमान कवियों में मानव विकास के विश्लेषण की विशेष रूचि है। साथ-साथ इनमें मानव समाज के आन्तरिक अधोपतन की सीमाओं का परीक्षण भी शामिल है। स्त्री-विमर्श पर लिखी जा रही कविताएँ सिर्फ किसी स्त्री विशेष पर नहीं, समाज में स्त्रियों की जगह को लेकर लड़ती हैं। आज भी पाठक को उसकी बदलती

प्राथमिकताओं और अभिरूचियों के बावजूद बृहत्तर मानवीय संवेदना और कविता के लिए अपेक्षित उस बुनियादी काव्य संस्कार से जोड़े रखने का प्रयत्न करती है, जिसके अभाव में हम किसी तरह की कविता के सम्प्रेषण की कल्पना भी नहीं कर सकते। इस प्रक्रिया में कविता और पाठक के बीच जो रिश्ता बनता है, वह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उस कविता को रचने वाले कवि के जीवन अनुभव कितने अन्तरंग, अनूठे और पाठक के मन मस्तिष्क पर असर रखने वाले बन पाये है। ऐसी कविता के निर्माण में विषय चयन और काव्य कौशल की भूमिका प्राय: गौण ही हुआ करती है। कवि ठीक जीवन के बीच बना रहता है और उसी को अपनी कविता के माध्यम से जैसे बेहतर बनाने की कामना करता है। उस जीवन को उकेरते हुए वह अपने समय के बहुआयामी यथार्थ से पाठक को रूबरू कराने का प्रयत्न भी करता है।"[71] हमारे सामाजिक ढ़ाँचे में शोषण और उपनिवेशी दृष्टि की जितनी पुकार है, नारी दृष्टि उस अर्थ में प्रमुख हो जाती है। रूढ़ियों और अन्धविश्वासों में दबी हुई मानसिकता न वर्तमान का सपना देख सकती है न भविष्य का। समकालीन कविताओं में नारी प्रतिक्रियाओं से बढ़कर पतनोन्मुखता को नापने और तोलने का उपक्रम मात्र है। इन अर्थ में नारी-सुलभ, व्यथा, पीड़ा, स्वप्न एवं आकांक्षाएँ समकालीन कविता की परिधि में जीवन्त हो जाती है।

इक्कीसवीं सदी में स्त्री विमर्श-

स्त्री विमर्श का एक हिस्सा विवाह में मिलने वाला दहेज भी होता है। भारत में दहेज प्रथा का उदय प्राचीन काल में ही हो चुका था किन्तु तब कन्या उपयोग हेतु दिया जाता था। आज के आधुनिक काल में यह एक विकराल दानव के रूप में उभरकर सामने आयी है। दहेज लेन-देन का इतना विस्तार हो चुका है कि इसके आगे स्त्री के स्वरूप को छोटा कर दिया है। दहेज न मिलने पर आज उसकी अग्निकुण्ड में आहुति दे दी जाती है। अपर्णा सक्सेना की कविता इसी विचार से ओत-प्रोत है-

"दहेज की आग
कुछ ऐसी है लगी

न धुँआ ही उठा

न राख ही मिली।

बिना दहेज के भी

दुल्हन नहीं लगती भली।

चीख रही आज ये

'वतन' की गली-गली।

मिला न दहेज तो

दुल्हन ही जली।

इसीलिए सिसक रही है

आज घर की सुकोमल कली।"[72]

स्त्री का जीवन मानव जाति के नाना प्रकार के सम्बन्धों से घिरा होता है। ऐसी स्थिति में नारी की अगर उपेक्षा की जाने लगे तो वह इस कुठाराघात को सहने पर मजबूर हो जाती है, और उसकी अन्तरात्मा रुदन करती रहती है। मीना शुक्ला की कविताओं में इस रुदन को देखा जा सकता है-

"जीने की अब चाह नहीं

मरने की बाट निहारूँ

ईश्वर जाने क्यों है रूठा

क्यों मुझे यहाँ बिठाये है।

न किसी को चाहत मेरी

न मैं किसी के काम आऊँ

जीना है मेरा बेमानी

ऊपर से खर्च बढ़ाऊँ
दिन निकलता गिनते-गिनते
रात दवा खा के मैं सो जाऊँ
क्या है दुनिया
क्या हैं बातें
गुमशुम में रह जाऊँ
चार खुशी के दिन देखे थे
उन्हें भुला न पाऊँ
रंग बिरंगी दुनिया में
मैं मिल कर न रह पाऊँ
कुछ सुन्दर सपने थे
उन को भुला न पाऊँ
जब तकदीर ही है ऐसी
कैसे मैं कमल खिलाऊँ
ऊबन भरी जिन्दगी से
अच्छा है आज मैं।
मर जाऊँ
माँगे मौत नहीं मिलती,
तो खुशियाँ कहाँ से लाऊँ
स्वर्ग न मिलेगा मुझे

नर्क ही मिल जाये

पर हर गम तो मिट जाये

कहाँ छिपी है,

मौत मेरी

जरा सामने तो आये।"[73]

स्त्री समर्पण स्वरूपा होती है। वह अपने निजी सम्बन्धों आदि में सभी को खुश रखना चाहती है। परिस्थितिवश अगर वह ऐसा नहीं कर पाती तो वह अपने आपको कौसती रहती है। मीना शुक्ला के शब्दों में-

"मैं अभागिन

किसी को खुश रख न सकी

जहाँ रही वहीं नफरत

और जिल्लत है पायी

एक दिन न जाने किसकी नजर लगी

एक तूफान उठा

और सब बिखर गया

रहा न अब शेष

सब हो गया विलीन शून्य में।"[74]

आज की नारी सुशिक्षित है, पढ़ी लिखी है, नौकरी करती है। समाज में उसे सम्मान जनक स्थान प्राप्त हो चुका है। फिर भी अगर स्त्री की उपेक्षा करें तो इसे आप क्या कहेंगे। मीना शुक्ला के शब्दों में-

"नारी अभिशाप बनी सारे जहाँ से खराब बनी

न कोई समझ पाया है

न समझ पायेगा उसे न कोई

कितना संघर्ष करे कितना हर्ष, विषादी मन समाती

फिर भी अपनों की ही नफरत पाती

पूरा जीवन जीती एक पल प्यार की चाहत रखती

नारी को शक्ति कहते फिर भी अबला ही रह जाती

खुशियाँ दूर-दूर तक न होती

जिल्लत नफरत शंका में ही आती

अपने आप में अबला ही रह जाती

नारी नारायणी कहलाती

पर वो तो नारी भी न रह जाती

चुप चुप रहती और अन्दर-अन्दर ही रोती है।"[75]

स्त्री की पहचान उसके शरीर से होती है। एक विशेष स्थिति जिसे योनी कहते है। स्त्री के लिए यह होना अनिवार्य है। यौन सम्बन्ध बनाने के लिए आज की स्त्री अपने आपको स्वतंत्र मानती है। पुरानी रूढ़ियाँ उसे पसन्द नहीं है। वह स्वयं कहती है। डॉ. रीता हजेला 'आराधना' की कविता 'रिश्वत में देह' में यही भाव दृष्टिगत होते है। यथा-

"देह मेरी पूंजी है

और रिश्वत में दे सकती हूँ मैं इसे

अपनी मर्जी से

मगर सोच नहीं पाई तुम

बात उस अगली लड़की की

जो कतई नहीं चाहती बिछना

रौंदे जाने के लिए

नगर कालीन की तरह

अकर्मण्यता के इस क्रम में जब

उसके हाथों में छूट जाती है नौकरी

या हो जाती है जोर जबरदस्ती

तब क्या पूरा दोष पुरुष का ही

कुछ हिस्सा तो तुम्हारा भी होगा

आखिर तुमने ही पाली पोसी यह परम्परा

प्यास को जगाने दिया जड़

व्यवस्था में जोड़े तीर तरकश

औरत के खिलाफ औरत का

भले ही हो जाय अनजान कृत्य

मगर तुमने जगा तो दी उसके अन्दर

प्यास बुझने की उम्मीद

उफना दिया गुस्सा

मेरे न बिछने पर तुम्हारी तरह।"[76]

पुत्र से ज्यादा पुत्रियों से सम्मान मिलता है, सभी को। स्त्री देह से ऊपर उठकर एक माँ, बहन और बेटी भी है। सुप्रिया दीक्षित के शब्दों में-

"काश! ऐसा होता

एक सपना ये सभी सच होता।

एक कली जिसमें आशा भी खिलने की,

एक चाहत थी औरों से मिलने की,

इसे कोई माली छूता।

काश! ऐसा होता

एक सपना ये भी सच होता।

एक बूँद बनकर आती वो किसी की हथेली पर

छिपती किसी की पलकों पर

या सजती किसी के मस्तक पर

किसी के नर्म होठों ने उसे भी छुआ होता।

काश! ऐसा होता

एक सपना ये भी सच होता।

क्या हुआ गर वो लड़की है

हाथों में लकीरें उसके भी है

चमका सकती है वो भी किस्मत तुम्हारी

कोई और नहीं आखिर संतान है वो तुम्हारी

उसे आने का एक मौका तो दो,

थोड़ा ही सही पर अपना भरोसा तो दो

छूने दो इन्हें भी अपने सपनों का आसमान

इतिहास गवाह है लड़कों से ज्यादा

मिला है इनसे हमें सम्मान

काश! ऐसा होता,

मेरी हर संतान इस लड़की का रूप होता।"[77]

स्त्री प्रेम, करुणा, दया का सागर है। अपने प्रियतम के लिए वह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति और वैभव को न्यौछावर कर सकती है। प्रियतम की प्रतीक्षा उसे कचोटती रहती है। श्रीमती नीलम खरे की कविता में निहित इस भाव को देखें-

"अब तो आन मिलो प्रियतम तुम

मौसम मारे तीर

घिरी घटाएं नभ में काली

मादक-सा अहसास

शीतल मंद पवन कहती है

होते सजना पास

अब तो आन मिलो प्रियवर तुम

आग लगाये नीर

छोटी रातें बड़ी लग रही

करवट बदलूं हर पल

इंद्रधनुष के रंग है फीके

मौसम करता है छल

अब तो आन मिलो साथी तुम

बढ़ती जाये पीर।"[78]

नारी शक्ति के गुणगान से साहित्य भरा पड़ा है। फिर भी समाज में नारी का स्थान सुरक्षित नहीं है। इसका कारण क्या है। इसका उत्तर खोजना होगा। सविता वीणा के शब्दों में-

"हे नारी!

तुम क्यों बेचारी

आधार शिक्षा की दात्री-तुम प्रथम शिक्षिका हो
करती हो सन्तान की उत्पत्ति, तुम ब्रह्मा हो
परमपिता परमात्मा का तुम निर्मल रूप हो
प्रकृति की सहचरी, शीतल छाया, कोमल धूप हो
सुसंस्कारवती बनो, मन गन्दा न करो
शीलवती बनो, तन नंगा न करो
अभद्रता प्रदर्शन त्यागो
जागो, स्वर्ण मृग के पीछे न भागो
निज शक्ति-सामर्थ्य पहचानो
अपने कर्त्तव्यों के साथ अधिकार भी जानो
मुख पर लज्जामयी मुस्कान लाओ
प्रत्येक पग दृढ़ता से आगे बढ़ाओ।"[79]

काव्य की एक और विधा गजल है। हिन्दी साहित्य में आज इसने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। वास्तव में गजल को प्रेमालाप के रूप में देखा जाता है किन्तु हिन्दी गजल आज स्त्री विमर्श से अछूती नहीं रह सकी। अनेक ग़ज़लकारों ने अपनी गजलों में स्त्री छवि, स्त्री अस्मिता, स्त्री विमर्श को ग्रहण किया है। आजकल हिन्दी गजलों में दार्शनिकता, प्रकृति प्रेम, जटिल मन-स्थितियों का प्रस्तुतिकरण स्पष्ट दिखाई देता है। छन्द विधान एवं रूपाकार उर्दू का होते हुए भी हिन्दी गजल अपने मूल स्वभाव, संस्कार एवं पीठिका के प्रकाश में काव्य की एक विशेष विधा बन गई है। अपने तेवरों के लिए हिन्दी गजल प्रतीक और बिम्ब को ही प्रमुख रूप से आधार बनाती है तथा ये दोनों उपादान गजल संसार में सशक्त सिद्ध हुए हैं।

देवी नागरानी की एक गजल के कुछ अंश देखें-

"उसकी चौखट पे पहरा दिया रात भर
बंद दर उसका मुझ पर रहा रात भर।
रात जलती रही, दिल धधकता रहा
यूं ही होता रहा रतजगा रात भर।"[80]

स्त्री संरक्षण की अनेक धारणायें है। स्त्री को किसी न किसी का आसरा, सहारा चाहिए होता है। इसी भाव को व्यक्त करती अमृताधीर की गजल के कुछ अंश देखे-

"जिनकी आंखों में तलाशा सहारा हमने।
पहले ही मोड़ पे वो हाथ मेरा छोड़ गये।
ऐसे कातिल को भला कौन सजा दे यारो।
एक मुस्कान से जो दिल हमारा तोड़ गये।"[81]

हिन्दी साहित्य में अनामिका का स्थान :

स्त्री विमर्श के क्षेत्र में एक नाम जो बड़ी त्वरित गति से उभरकर सामने आया, वह है अनामिका का। अनामिका एक अत्यन्त विदूषी लेखिका ही नहीं, स्त्री विमर्श की प्रबल वक्ता भी है। उन्होंने स्त्री विमर्श को कुलीनता के चौखटे से बाहर निकालकर दलित स्त्री, वेश्या स्त्री और आम घरेलू स्त्री के विमर्श से जोड़ा है। अनामिका समाज के सबसे पिछली पंक्ति के इन्सानों के साथ खड़ी नजर आती हैं। वे उनके दुखों, पीड़ाओं व त्रासदियों से व्यथित ही नहीं होती, बल्कि उसे अपनी कलम की धार से तराश कर इतना तीखा व पैना कर देती हैं कि वे तीर की तरह सीधे मर्म में उतरी चली आती हैं।"[82] अनामिका प्रतिभा धनी कवयित्री, आलोचक, उपन्यासकार है। वे लोकप्रिय युवा रचनाकार है। उनकी लोकप्रियता का मुख्य कारण उनकी रचनाओं में भरी पड़ी उनकी लोकदृष्टि है। वे लोकजीवन को विशेषकर स्त्री जीवन को स्थल बनाती है। स्त्री जीवन में भी अनछुए एवं अनदेखे अनुभव सन्दर्भों को वे कविता में समूर्त कर लेती है। उनकी कविताओं में ऋतुमती होना, गर्भधारण करना, दूध पिलाना,

बच्चे बड़े करना, पिटना, बलात्कार, गालियाँ, नोंच-खसोट और भी भांति भांति के जो अनुभव स्त्रियों को चुपचाप झेलने पड़ते हैं। उनका मार्मिक वर्णन उनकी कविताओं में देखने को मिलता है।

निष्कर्ष-

अनामिका की कलम यही नहीं थमती वे स्त्रियों द्वारा किये गये कार्यों- रोटी बेलने, जुएं चुनने, झाड़ू देने, सेफ्टीपिन के इस्तेमाल की अनुभूतियाँ भी उनके लिए विशिष्ट है। अपनी स्मृतियों के आलोक में स्त्री संसार के विशिष्ट अनुभवों को वे कविता में प्रयोग करती है। लोकगीतों परिहास वृत्ति उनकी कविता की एक प्रमुख बड़ी उपलब्धि है। अनामिका स्त्री आन्दोलन एवं स्त्री साहित्य के संदर्भ में किसी भी विशेष आंदोलन की ओर इशारा नहीं करती है। लेकिन अनामिका के विचार में लोक धुन है, प्रकृतिबोध है, बहनापा, मानवीयता, अहिंसा, ममता, समन्यवयात्मकता हैं। सभी नारीवादियों के महान आशयों का समन्वय है उसमें। इसके साथ एक नये प्रजातंत्रीय समाज एवं सत्ता की सृष्टि की ओर इशारा है। उसमें सभी उपेक्षित शामिल है। इन सबके कारण अनामिका का स्त्री विमर्श संबंधी विचार परिस्थिति नारीवाद से अलग नहीं है। अनामिका के काव्य में नारी के निजीजीवन से संबंधित जो तथ्य प्राप्त होते है वे अन्यत्र दुलर्भ है। आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अनामिका काव्य जितना समय सापेक्ष है उतना अन्य साहित्य नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 शैली कुमारी, कितना पानी-काव्य संग्रह भूमिका पृ. 7-8

2 बृहदारण्योपनिष् तृतीय अध्याय

3 ब्रहमकुमार, जगदीशचन्द्र, महिला सशक्तिकरण, पृ. 23

4 ब्रहमकुमार, जगदीशचन्द्र, महिला सशक्तिकरण, पृ. 26

5 डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 50

6 डॉ. शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ. 73

7 ब्रहमकुमार, जगदीशचन्द्र, महिला सशक्तिकरण, पृ. 19

8 रामचन्द्र श्रीवास्तव चन्द्र, कबीर साखी सुधा, पृ. 116

9 रामचन्द्र श्रीवास्तव चन्द्र, कबीर साखी सुधा, पृ. 116

10 आलोचना, जनवरी-मार्च 2001, प 1.194

11 डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 235

12 डॉ. लखनलाल खरे, हिन्दी भाषा और साहित्य के संवर्धन में महिला साहित्यकारों का अवदान, पृ. 92

13 रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 125

14 नाहर सिंह सोलंकी, रत्नावली (सं.) सं. 1995, पृ. 15

15 सं. श्री भारद्वाज, रत्नावली, सं. 2003, पृ. 125

16 सं. श्री भारद्वाज, रत्नावली, सं. 2003, पृ. 122

17 नाहर सिंह सोलंकी, रत्नावली (सं.) सं. 1995, पृ. 24

18 डॉ. के.एम. मालती, स्त्री विमर्श, भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ. 16

19 बसवमार्ग, एक दशक, सं. टी.जी. प्रभाशंकर प्रेमी, बसवा समिति बेंगलूर, प्र. सं. 2005, पृ. 80

20 श्रीमती जयराज शेखर-अक्कमहादेवी, बसव समिति, बेंगलूर, सं. 2005, पृ. 3

21 नन्दिनी गुंडुराव, (अनुवाद), अक्कमहादेवी के वचन, पृ. 25

22 डॉ. लखनलाल खरे, हिन्दी भाषा और साहित्य के संवर्धन में महिला साहित्यकारों का अवदान, पृ. 82

23 डॉ. लखनलाल खरे, हिन्दी भाषा और साहित्य के संवर्धन में महिला साहित्यकारों का अवदान, पृ. 82

24 डॉ. लखनलाल खरे, हिन्दी भाषा और साहित्य के संवर्धन में महिला साहित्यकारों का अवदान, पृ. 135

25 मोहन लाल जाट, रीतिकाव्य व्याख्या एवं समीक्षा, पृ. 12

26 मोहन लाल जाट, रीतिकाव्य व्याख्या एवं समीक्षा, पृ. 128

27 बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 316

28 मोहन लाल जाट, रीतिकाव्य व्याख्या एवं समीक्षा, पृ. 343

29 डॉ. लखनलाल खरे, हिन्दी भाषा और साहित्य के संवर्धन में महिला साहित्यकारों का अवदान, पृ. 252

30 डॉ. लखनलाल खरे, हिन्दी भाषा और साहित्य के संवर्धन में महिला साहित्यकारों का अवदान, पृ. 252

31 डॉ. लखनलाल खरे, हिन्दी भाषा और साहित्य के संवर्धन में महिला साहित्यकारों का अवदान, पृ. 254

32 बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 316

33 बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 316
34 द्वितीय पी.यू.सी. किताब साहित्य किरण, पृ. 119
35 सं. रामविलास शर्मा, राग विराग, पृ. 94
36 रामचन्द्र शुक्ल, हिदी साहित्य का इतिहास, पृ. 654
37 डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 55
38 सं. रामविलास शर्मा, राग विराग पृ. 118-119
39 महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियॉ, पृ. 148
40 सं. निर्मला जैन, महादेवी साहित्य समग्र-1 पृ. 273
41 मधुमती, नवम्बर 1997, प. 224, आलोचना, जनवरी-मार्च 2001, पृ. 194
42 गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ. 175
43 गगनाचंल, अप्रैल-जून 2009, पृ. 99
44 सीढ़ियों पर धूप में, संग्रह, पृ. 14
45 सीढ़ियों पर धूप में, संग्रह पृ. 17
46 भगवत रावत, समुद्र के बारे में, पृ. 20
47 देवी प्रसाद मिश्र औरतें यहाँ नहीं दिखती, प्रार्थना के शिल्प में नहीं, पृ. 12
48 प्रयाग शुक्ल, अधूरी चीजें तमाम, पृ. 65
49 मंगलेश डबराल, पहाड़ पर लालटेन, पृ. 21
50 उमाशंकर चौधरी, कहते है तब शहंशाह सो रहे थे, पृ.11
51 चनद्रकान्त देवताले, औरत का हॅसना, पृ. 11
52 विष्णु नागर, कुछ चीजें कभी खोई नहीं, कविता उसे यकीन था, पृ. 72
53 समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-सितम्बर, 1990
54 गगनाचंल, जनवरी-मार्च, 1993
55 गगनाचंल, जनवरी-मार्च, 1993
56 गगनाचंल, जनवरी-मार्च, 1993
57 फैमिनिस्ट प्रैक्टिस एण्ड पोस्ट-स्ट्रक्चुरलिस्ट थियरी क्रिस वीडो, पृ. 119
58 गगन गिल, अँधेरे में बुद्ध, पृ. 15
59 गगन गिल, अँधेरे में बुद्ध पृ. 15
60 समकालीन भारतीय, साहित्य, जनवरी-मार्च 1986
61 बलदेव वंशी, आत्मदान, पृ. 21
62 भारत भूषण अग्रवाल, अग्नि लोक, पृ. 5
63 सं. रामस्वरूप खरे, शोधार्णव, जनवरी मार्च 2010, पृ. 15
64 सविता सिंह, अपने जैसा जीवन-फ्लैप से उद्धृत
65 सविता सिंह, नींद थी रात थी संग्रह, पृ.15
66 लड़कियाँ जो पुल होती है, संवेदना, पृ. 13
67 आलोचना, अप्रैल-जून 2010, पृ..11
68 वर्तमान साहित्य का कविता विशेषांक, अप्रैल-मई, 1992
69 वर्तमान साहित्य का कविता विशेषांक, अप्रैल-मई, 1992
70 गगनांचल अप्रैल-जून 2009, पृ. 39
71 समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त, 2007, पृ. 208-209
72 स. प्रवीण कुमार सक्सेना उजाला, काव्य मंजूषा, पृ. 23

73 स. डॉ. प्रवीण कुमार सक्सेना 'उजाला', काव्य पंचम, पृ. 52-53
74 स. डॉ. प्रवीण कुमार सक्सेना 'उजाला', काव्य पंचम, पृ. 57
75 स. डॉ. प्रवीण कुमार सक्सेना 'उजाला', काव्य त्रिवेणी, पृ. 91
76 स. डॉ. कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, स्पंदन (त्रैमासिक) अंक 2, जुलाई अक्टूबर, 2009, पृ. 14
77 स. डॉ. कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, स्पंदन (त्रैमासिक) प्रवेशांक, जुलाई अक्टूबर, 2006, पृ. 28
78 स. डॉ. महेन्द्र अग्रवाल, नई गजल, (त्रैमासिक) जुलाई सितम्बर 2008, पृ. 67
79 स. डॉ. आनन्दसुमन सिंह, सरस्वती सुमन (त्रैमासिक) अंक 2, अप्रैल जून, 2014, पृ. 23
80 स. डॉ. महेन्द्र अग्रवाल, नई गजल, (त्रैमासिक) जनवरी-मार्च 2018, पृ. 24
81 स. डॉ. कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, स्पंदन (त्रैमासिक) अंक 2, मार्च-जून 2006, पृ. 30
82 रेखा कस्तावर, स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, पृ. 159